डॉ. शांतिबेन मोढवाडिया
हिन्दी विभाग

प्रश्न –२ भारतेन्दु युगीन काव्य – प्रवृतियों पर प्रकाश डालिए ।

उतर : आधुनिक काल का आरंभ भारतेन्दु से होता है । आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेन्दु युग कहा जाता है । इसकी अवधि इ.स. १८०० (सवंत १८५० से १९००) से १८४३ तक मानी गई है । भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'जनक' माने जाते है । भारतेन्दु पूर्व हिन्दी गद्य का आरंभ हो चुका था और आरंभिक हिन्दी गद्य के चार लेखक तथा दो राजाओने इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया था । पद्य में ब्रजभाषा तथा गद्य में खडीबोली का व्यवहार होता रहा एसे समय में भारतेन्दुने हिन्दी साहित्य का नेतृत्व किया । साहित्यकारों की एक मंडली बनाई । पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्य के विविध स्वरुपों को प्रस्तुत किया जाने लगा । वस्तुतः यह युग साहित्यिक प्रवृतियों से आंदोलित होता रहा । इनमें कव्यि की प्रवृति महत्वपूर्ण सिद्धि होती है । अब हम इन प्रवृतियों की विस्तृत चर्चा कर रहें हैं –

(१) राष्ट्रीयता : –

भारतेन्दु युग में साहित्यकार रीतिकाल की परंपरा का त्याग कर राषट्रीयता को साहित्य की मूल चेतना और मुख्य विषय के रुप में स्वीकार करते है । भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, राधाचरण गौस्वामी आदिने देशभक्ति के गीत गाये । इनकी कविताओं में अतित गौरव का यशोगान और वर्तमान की दूरव्यवस्था के प्रति गहराक्षोभ व्यक्त किया गया । इस युग के कवियोंने रानी विक्टोरिया के शासन की प्रशंसा की है और राजभक्ति के गीत गाये है, जैसे –

''जयति राजराजेश्वरी जय जय परमेश ।''

राष्ट्रप्रेम के संदर्भ में अंगेजो की कूटिलनीति एवम् आर्थिक नीति और साम्राज्यवाद पर चुभते हुए गहरे व्यंग्य किये है, जैसे –

''भीतर भीतर सब रस चूसै,
हँसि हँसि के तन मन धन मूसै
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखी सज्जन ! नहिं अंग्रेज ।''

(२) सामाजिक चेतना : –

भारतेन्दु युग के कवियोने नारी शिक्षा, विधवाओं की दूरदशा, अस्पृश्यता, रुढियों का विरोध आदि विषयों पर कवितायें लिखि है । इन्होंने मध्यमवर्गीय समाज की परिस्थितियों का सच्चा चित्रण किया है । इन पर आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज का प्रभाव देखा जा सकता है । भारतेन्दु, प्रतापनारायणमिश्र, प्रेमधन आदि की कविताओं में सामाजिक

चेतना का स्वर प्रबल है । परंतुं कुछ कवि इनसे दूर रहे । और सनातन हिन्दू धर्म का समर्थन किया । अंबिकादत्त व्यासने वर्णाश्रम धर्म को उच्चीत माना । पंडित राधाचरण गोस्वामीने विधवा विवाह का विरोध किया । कुछ कवियोंने अंग्रेजी शासन की प्रसंशा की, क्योंकि अंग्रजी शासन में बीजली, रेल, डाक व्यवस्था, याता-यात के साधन, सिंचाई आदि का भी विकास हुआ । जिसका लाभ प्रजा को मिला । परंतु भारतेन्दु और प्रताप नारायण मिश्र जैसे कवियोने विदेशी शासकों की अर्थनीति, शोषण, अकाल, महंगाई, महामारी और कर के बोज की कटु निंदा की । भारतेन्दु ने समाज की पीडा को इन शब्दो में व्यक्त किया है -

"रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई
हा ! हा ! भारत दूरदशा न देखी जाई ॥"

तो मिश्रजी लिखते है -

" तब ही लखियों जहाँ रहियो एक दिन कंचन बरसत ।
तई चौथा ही जन रुखी रोवहु रोटी को तरसत ।"

(३) भक्तिभावना : -

इस काल के कवियोंने सगुण भक्ति के गीत गाये । भारतेन्दु स्वयं वल्लभ संप्रदाय के थे । वे कहा करते थे -

"सखा प्यारे कृष्ण के .... गुलाम राधा रानी के .... ।"

कहीं कहीं कवियों में संप्रदाई भावना के भी दर्शन हो जाते है । हरिनाथ पाठक, तोताराय आदि कविने रामकाव्य पर कलम चलाई । ईनकी कविताखों में भक्ति और राष्ट्रियता का समन्वय मिलता है । इन्होने जातीयता, राष्ट्रियता और भक्ति को समान महत्व दिया ।

(४) शृँगारिकता

इन कविओने रातिकालीन कविओं का अनुशरण करते हुए कृष्ण कथा के संदर्भ में श्रृँगाररस के मधुर पद रचे है । इनका रूप माधुर्यपूर्ण भक्ति का होने के कारण इनमे नखशिख वर्णन और नायिका भेद का वर्णन भी हुआ है । जैसे भारतेन्दुने प्रेम सरोवर, प्रेम माधुरी, प्रेम तरंग, जगयोहनसिंहने 'प्रेमलता', 'प्रेमसंपति' प्रेमधनने 'वर्षाबिन्दु' आदि कविताओं में श्रृँगार को महत्व दिया है । कृछ कवियोने इनमें मर्यादा का अतिक्रमण भी किया है । कुछ कवियोने उर्दू कविता के प्रभाव स्वरुप क्षमा परवाना प्रतिक के माध्यम से वेदना का मार्मिक चित्रण भी किया है ।

(५) प्रकृति चित्रण

कवियोनें प्रकृति - चित्रण में रीतिकालीन परिपाटी का अनुशरण किया और प्रकृति को उदीपक के रुप में चित्रित किया । किन्तुं कहीं कहीं प्रकृति सौंदर्य का स्वछंद और स्वतंत्र चित्रण भी मिलता है । जैसे भारतेन्दु के वसंत होली अंबिकादत्त व्यास की 'पावस पचीसी' और जगमोहनदास की अनेक कवितायें प्रकृति के बडे ही सुंदर और मनोहर चित्र

अंकित किये गये है । इन कवियोनें संस्कृत काव्य से ही प्ररणा ग्रहण की है । भारतेन्दु के प्रकृति – चित्रण में अलंकारो का बाहुल्य दिखाई देता है ।

(६) हास्य – व्यंग्य का चित्रण

इस युग की कविताओं में हास्य – व्यंग्य की मात्रा प्रचुर है । इन कवियोंने पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, सामाजिक अंधविश्वास और रुढियो पर पैने व्यंग्य किये है । विषय और शैली की दृष्टि से इन कवियोंने अनेक प्रयोग किये है । जिनमें भारतेन्दु का योगदान सार्वधिक है । उर्दू नाटक 'इन्द्रसभा की पेरोणी' के रुप में भारतेन्दुने बन्दसभा लिखा तथा खुसरो की शैलीमें मुकरियों लिखि जैसे –

''हैं ! हैं ! उर्दू हाय हाय कहाँ सिधारी हाय हाय ।''

प्रताप नारायण मिश्र की बहुत सी कवितायें इस संदर्भ में उल्लेखनीय है ।

(७) काव्यशास्त्र का निरुपण

रीतिकाल में लक्षणग्रंथ की परंपरा थी । जो आधुनिक काल में लगभग समाप्त हो गई । लच्छीराम, रामचंद्रभूषण, मुरारीदान आदि विद्वानोने अलंकार, नायिकाभेद और पींगलशास्त्र पर ग्रंथ लिखे । गद्य में भी साहित्य की समीक्षा लिखि जाने लगी ।

(८) समस्यापूर्ति

कविता के क्षेत्र में समस्यापूर्ति इस काल की विशेषता है । कवियों के जमघट में छोटे छोटे विषयो पर समस्यापूर्ति होती रहती है तथा पत्र – पत्रिकाओं में भी समस्यापूर्ति की बोलबाला थी । प्रेमधन, भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र आदि इस क्षेत्रमें प्रसिद्ध कवि थे ।

(९) काव्यानुवाद

इस काल में राजा लक्ष्मणसिंहने रघुवंश और मेघदूत का, भारतेन्दुने नारद भक्तिसूत्र का, ठाकुर जगमोहनसिंहने 'ऋतुसंहार'और 'मेघदूत' का तथा बाबू तोतारामने 'वाल्मिकी रामायण' का पद्य में अनुवाद किया । श्रीधर पाठकने अंग्रजी काव्यों का हिन्दी में अनुवाद किया । एकांतवासी योगी और 'उजड ग्राम' नामक काव्यानुवाद बहुत ही सफल हुए । इस प्रकार अनुवाद के आरंभ का श्रेय भारतेन्दु युग को मिलता है ।

(१०) कलापक्ष

इस काल में मुक्तक काव्य ही अधिक लिखे गये । कुछ प्रबन्ध काव्य भी मिलते हैं । भारतेन्दु ने प्रबन्ध काव्य भी लिखे । लोकसंगीत और शैली को अपनाया गया । जैसे कजलीया, लावणी, मुकरीया, गजल आदि प्रकार अपनाये गये ।

इस काल के कवियोने मिश्रित भाषा का प्रयोग और उर्दू, फारसी के शब्दो का त्याग किया । इन कवियों पर क्षेत्रिय प्रभाव भी देखा जा सकता है । जैसे मिश्रणी की भाषाा पर कनोजीभाषा का और प्रेमधन की भाषा पर मिरझापुरी बोली का प्रभाव परिलक्षित होता है । कवियोंने नये नये शब्दों की खोज, मुहावरे और कहावतो के प्रयोग से भाषा को

अधिक समृद्ध बनाया है । कुछ कवियोंने खडीबोली में भी कवितायें लिखि । जैसे भारतेन्दुने 'फुलों का गुच्छा', प्रेमधनने 'मयंकमहिमां' कवितायें लिखि । अलंकार और छंदयोजना की दृष्टि से इन कवियोनें परंपरा का पालन नहि किया । ये कवि अधिक जागृत है ।

- **मूल्यांकन / उपसंहार**

भारतेन्दु युग प्राचीन और नवीन की संधि पर खडा है । इस युग में परस्पर विरोधी दृष्टि और विचारधारायें थी । परंतु इन कवियोंने युग चेतना को ग्रहण करके प्राचीन और नवीन का समन्वय किया है । डॉ. नगेन्द्र इस समन्वय को भारतेन्दु युग की सब से बडी विशेषता मानते है ।

२० – हिन्दी भाषा का उदभव और विकास बताते हुए – हिन्दी भाषा की उत्पति पर प्रकाश डालिए ।

और

- **हिन्दी भाषा का स्वरुप और विकास अपने शब्दो में लिखिए ।**

और

- **हिन्दी भाषा की उत्पति पर प्रकाश डालिए ।**

'' 'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु से बना है । जिसका अर्थ होता है बोलना या व्यक्त करना । इसका अभिप्राय यह है कि भाषा वह है जो बोली जाती है व्यक्त होती है ।''

समान्यतः भाषा मनूष्ज्ञ की सार्थक व्यक्त वाणी को कहते है । इसके द्वारा मनूष्यके भावो ; विचारो और भावनाओ को व्यक्त किया जाता है । भाषा की परिभाषा देना एक कठिन कार्य है । फिरभी भाषा वैज्ञानिको ने उनकी परिभाषा देने का प्रयत्न किया है परंतु ये परिभाषा पूर्ण नहि है ।

(१) भाषा की परिभाषा

(१) ''आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने उच्चरित घ्यनि संकेतो की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अथवा जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार विनीमय या सहयोग करते है उस यादृच्छिक ,रुढ घ्वनि संकेत की प्रणालि को भाषा कहते है ।''

(२) ''भाषा एक एसा साधन है जिसके माघ्यम से हम अपने विचारो और भावो को आसानी से एक – दूसरे तक पहुँचाते है ।''

पहली परिभाषा मे तीन बाते विचारणिय है । (१) भाषा घ्वनि संकेत है, (२) वह यादृच्छिक है और (३) वह रुढ है ।

(१) भाषा घ्वनि संकेत है –

सार्थक शब्दो के समूह या संकेत को भाषा कहते है यह संकेत स्पष्ट होना चाहिए । मनुष्य के जटिल मनोभावों को भाषा व्यक्त करती है । किन्तुं केवल संकेत भाषा नहि है ।

रेलगाडी का गार्ड, हरि जंडी दिखाकर यह भाव व्यक्त करता है किं गाडी अब चलनेवाली है । किन्तुं भाषा में इस प्रकार के संकेत का महत्व नहि है । सभी संकेतो को सभी लोग ठिक तरह समज नहिं पाते और नहिं इनसे विचार सही रुप में व्यक्त हो पाता है । सारांश यह है कि भाषा सार्थक और स्पष्ट होनी चाहिए ।

(२) भाषा यादृच्छिक संकेत है ।

यहाँ शब्द और अर्थ में कोई अंतर नहि रहता । जैसे किं बिजली, घोडा आदि शब्द और अर्थ में कोई अंतर नहि है । जब बोलते है । तो वह क्यों बोलते है यह बताना कठिन है । किन्तुं इनकी ध्वनियों को समाज ने स्वीकार कर लिया है । इसके पीछे कोई तर्क नहि है ।

(३) भाषा रुढ है ।

भाषा के ध्वनि संकेत रुढ होते है । परम्परा या युगो से इनके प्रयोग होते आये है । औरत, बालक, वृक्ष आदि शब्दो का प्रयोग लोग अनंतकाल से करते आ रहे है । बच्चे जवान, बुढे सभी इनका प्रयोग करतें है । क्यों करते है इसका कोई कारण नहि है यह प्रयोग तर्कहीन है ।

इसके अतिरिक्त कई भाषा वैज्ञानिको ने भाषा की परिभाषाएँ दी है ।

डो. श्याम सुंदरदास

''मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मती का आदान - प्रदान व्यक्त करने के लिए ध्वनिसंकेतो का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते है ।''

(४) डो. बाबु रामसक्सेना

''जिन ध्वनिचिन्हों द्वारा मनुष्य विचार, विनिमय करता है उसको समष्टि रुप से भाषा कहते है ।''

(५) डो. मंगलदेव शास्त्री

''भाषा मनुष्यो की उस चेष्टा या व्यपार को कहते है जिससे मनुष्य अपने उच्चारण उपयोगी शरीर अवयवो से उच्चारण किये गये वर्णनात्मक या व्यक्त शब्दो द्वारा अपने विचारो को प्रगट करते है ।''

उपर्युक्त परीभाषाओं से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है ।

(१) भाषा में ध्वनि संकेतो का परम्परागत और रूढ प्रयोग होता है ।

(२) भाषा के सार्थक ध्वनि संकेतो से मनकी बातों या विचारो का विनिमय होता है ।

(३) भाषा के ध्वनि संकेत किसी समाज या वर्ग, आंतरिक और बाह्य कार्यो के संचालन या विचार विनिमय में सहायक होते है ।

(४) हरवर्ग या समाज के ध्वनि संकेत अपने होतें है दूसरो से निम्न होते है ।

(५) भाषा के ध्वनि संकेत उच्चारण उपयोग शरीर अवयवो से वर्णो या शब्दो से व्यक्त होते है ।

(२) हिन्दी भाषा की उत्पति

भाषा नदि की धारा की तरह चंचल है । यह रुकना नहि जानती । यदि उसे कोई बलपूर्वक रोकना भी चाहे तो यह उसके बंधन को तोडकर आगे निकल जाती है ।यह भाषा की स्वाभाविक प्रकृति और प्रवृति है । हर देशकी भाषा के इतिहास में ऐसी बात देखी जाती है । देखने को मिलती है ।

भारत एक प्राचीन देश है । यहाँ के लोग भिन्न – भिन्न कालो में भिन्न – भिन्न भाषाएँ लिखते और बोलते आये है । संस्कृत इस देश की पूरानी भाषा है । जिसका व्यवहार हमारे ऋषि मुनियो, विद्वानो और कवियो ने समय – समय पर किया है । इसका प्राचीनतम रुप संसार की सर्वप्रथम कृति ऋग्वेद में देखने को मिलती है । संस्कृत को आर्यभाषा या देवभाषा भी कहते है । यह आर्यभाषा का अनुमान है किं लगभग पैतिसों वर्ष पूरानी है । हिन्दी इसी आर्यभाषा संस्कृत की उतराधिकारिणी है । जिसकी उत्पति की कथा निम्नलिखित है । भारतीय आर्यभाषा संस्कृत का इतिहास (साडेतीन हजारवर्ष) का है । इस इतिहास को तीन कालो में बाँटा गया ।

(१) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा – काल (१५०० इ.पू. से ५०० इ. पू. तक)

(२) मध्यकालिन भारतीय आर्यभाषा – काल (५०० ई. पू. से १००० ई. तक)

(३) आधुनिक भारतीय आर्यभाषा – काल (१००० ई. से आज तक)

इन तीन कालों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है प्रथम काल में चारो वेद, ब्राह्मणग्रंथो और उपनिषदो की रचना हुई । जो वैदिक संस्कृत से लीखे गये है । इन ग्रंथो की भाषा का रुप एक नहि है । भाषा का सबसे पुराना रुप ऋग्वेद संहिता में पाया जाता है । लोगो का कहना है किं वैदिक संस्कृत का सबसे पूराना रुप तब का है जब आर्य पंजाब के आसपास निवास करते थे । फिर आर्य आगे बढे इसी तरह वे पूरब की और बढ ते गये । और वैदिक भाषा का क्रमशः विकास होता गया । यह भाषा बोलचाल की नहि साहित्यक थी । विद्वांनो और मनस्वीयों की थी ।

दर्शनग्रंथो के अतिरिक्त संस्कृत का उपयोग साहित्य मे भी हुआ है । इसे लौकिक संस्कृत कहते है । इसमे रामायण, महाभारत, नाटक, व्याकरण आदि लिखे गये है । सच तो यह है कि साहित्य की भाषा बोलनेवालों की भाषा से थोडी भिन्न होती है । इसी दृष्टि से लौकिक संस्कृत भाषा बोलचाल की भाषा से निश्चित ही दूर थी । किन्तुं शिष्ट भाषा बोलीसे बिलकुछ अलग नहि होती । दोनो का आदान – प्रदान होता रहा है ।

(३) भाषा का विकास

५०० इ. पूर्व से १००० इ. तक भारतीय आर्यभाषा एक नये युग मे प्रवेश करके नयी भाषा की सृष्टि एवम विकास करती रही । फलतः इस काल में लोकभाषा का विकास हुआ । इस विकास के फल स्वरुप भाषा का जो रुप सामने आया उसे प्राकृत कहते है ।

वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के काल में बोलचाल की जो भाषा दबी पडी थी उसने अनुकूल समय पाकर शिर उठाया और उसीका प्राकृतिक विकास प्रकृति में हुआ । उस काल में यह प्राकृत तीन अवस्था सें विकसित होकर निकली । प्रथम अवस्था में (५०० इ. पूर्व से इ.स. के आरंभतक) पाली और शिलालेखी प्राकृत सामने आई, दूसरी अवस्थामें (इ.स. के आरंभ से ५०० इ. तक) अनेक प्रकार की प्राकृत का विकास हुआ । और तीसरी अवस्थामे (५०० इ. स. १००० इ. तक) अप्रभंशो का विकास हुआ ।

(१) पाली

पाली भारत की प्रथम देवभाषा है । इसे सबसे पुरानी प्राकृत भी कहते है । इसी भाषा में भगवान बुद्ध और उनके अनुयायीओनें जनसाधारण को उपदेश, दिया था । सिंहल या श्रीलंका के लोग पालि को मागधी कहते है । क्योकिं इस भाषा की सृष्टि मगध में हुई थी । इसमें तत्कालीन अनेक बोलियों के तत्व विद्यमान है । इसमें तद्भव शब्दो का प्रयोग अधिक हुआ है ।

(२) प्राकृत

पहली सदी से ५०० इ. तक उतरभारत के भिन्न - भिन्न भागो में जिस भाषा का व्यवहार अधिक हुआ इसे प्राकृत भाषा कहते है । आचार्य हेमचंद्र इसे संस्कृत से निकली भाषा मानते है । सामान्य मत यह है किं वह भाषा जो असंस्कृत थी पंडितोमे प्रचलित नहि थी । सहज ही बोली और समजी जाती थी । स्वभावतः वह प्राकृत कहलाई । भाषा विज्ञानने प्राकृतो कें पांच प्रमुख भेद स्वीकार कियें है । (१) शौरसेनी (२) पैशाची (३) महाराष्ट्री (४) अर्धमाग्धी (५) मागधी ।

शौरसेनी प्राकृत मथुरा या शूरसेना जनपद के आसपास बोली जाती थी । यह मध्यप्रदेश की प्रमुख भाषा थी जिस पर संस्कृत का प्रभाव था । मध्यप्रदेश संस्कृत का मुख्य केन्द्र था, बादमें यहि हिन्दी का मूल केन्द्र बना । पैशाची, प्राकृत, उतर पश्चिम में काश्मीर के आसपास की भाषा थी । महाराष्ट्रि प्राकृत संस्कृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है । मराठी का विकास इसी से हुआ । अर्धमागधी का क्षेत्र मागधी और शौरसेनी के बीच का है । इस भाषा का उपयोग जैन साहित्य मैं हुआ है ।

– अपभ्रंश (आधुनिक भारतीय आर्यभाषा)

सन् १००० से भारतीय आर्य भाषा नयें युगमें प्रवेश करती है । मध्यकालीन भारती आर्यभाषा का चरमविकास अपभ्रंश में हुआ । यह वस्तुतः पंडितो की भाषा पर जनता की भाषा की विजय थी । जो अपभ्रंशो में फैली गई । अपभ्रंशो के अनेक नाम प्रचलित है ग्रामीण भाषा, देशी, देशभाषा, अपभ्रंश, अवहंस, अवहठ्ठ, अवहठ्, अवहट्ट आदि । अपभ्रंश का अर्थ है बिगडा हुआ । गिरा हुआ । यह नाम पंडितो द्वारा दिये गये थे । जिन्हे लोकभाषा सदा इसी रुप में दिखाई पडती है । भारतीय भाषा के इतिहास में ५०० इ. से १००० इ. तक के काल को अपभ्रंश काल कहा गया है । आधुनिक आर्यभाषाओ (हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, पंजाबी, उर्दू, उडिसा आदि) की उत्पति इन्ही अपभ्रंशो से हुई

है । एक प्रकार से यह अपभ्रंश भाषाएँ प्राकृत भाषाओ और आधुनिक आर्यभाषाओं के बीच की कडिर्या है ।

उतर भारत में अपभ्रंश के सात भेद या रुप प्रचलित है । जिनसे आधुनिक भारतीय भाषा का जन्म हुआ ।

अपभ्रंश	–	आधुनिक भारतीय भाषाएँ
(१) शौरसेनी अपभ्रंश	–	पश्चिमी, हिन्दी, राजस्थानी, ब्रजभाषा, खडीबोली ।
(२) पैशाची अपभ्रंश	–	लहंदी, पंजाबी ।
(३) ब्राचड अपभ्रंश	–	सिन्धी ।
(४) खस अपभ्रंश	–	पहाडी, कुमायूनी, गढवाली ।
(५) महाराष्ट्रि अपभ्रंश	–	मराठी ।
(६) अर्ध्ध मागधी	–	पूर्वी हिन्दी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढी
(७) मागधी अपभ्रंश	–	बिहारी, बांगला, उडिया, असमिया ।

११०० इ. के आसपास अपभ्रंश का काल समाप्त हो गया । और इसके बाद आधुनिक भाषा का युग आरंभ हुआ । १४ वी सताब्दी से आधुनिक भाषाओं का स्पष्ट रुप सामने आया । भाषा परिवर्तन के इस संक्रमणि काल में संदेश रासक उक्ति, व्यक्ति, प्रकरण, कीर्तिलता, आदि कुछ ग्रंथो की स्वता हुई, जिसमें पुरानी हिन्दी के कुछ रुप देखे जा सकते है । इस काल की भाषा को अवहट्ट नाम से पुकारा है । कवि विद्याततिआदि ने अवहट् की संज्ञा दी है । अवहट्ट, अपभ्रंश काही विकृत रुप है । इन बातों से स्पष्ट होता है किं अपभ्रंश के विभिन्न रुपो से हिन्दी और अन्य भारतीय भाषओं की उत्पति हुई । १००० इ. आसपास हिन्दी अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की तरफ अपनें अस्तित्व में आज भी इस विषय में जर्मन से मिलती झुलती है । डो. उदयनारायण तिवारी हिन्दी को रचनात्मक भाषा कहते है ।

हिन्दी की मूल उत्पति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी गई है । हिन्दी के अंतर्गत पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी और पहाडी प्रदेश की बोलियाँ आदि का समावेश हो गया है ।

– **निष्कर्ष**

इस प्रकार हिन्दी भाषा की उत्पति और उनका विकास अन्य भाषाओं की तरह हुआ । जॉन बिम्सने आधुनिक आर्यभाषाओं में हिन्दी को सर्वाधिक महत्व दिया है । उन्होने मध्यप्रदेश को हिन्दी का मुख्य क्षेत्र बताते हुए लिखा है किं यो तो हिन्दी की अनेक बोलियां है किन्तु उसका एक सर्वमान्य व्यापक रुप भी है । जिसका विकास दिल्ली के आसपास के क्षेत्र में हुआ है । और जो सर्वत्र शिक्षित के द्वारा एक रुप से (खडीबोली) बोली और समझी जाती है । बिम्सने हिन्दी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है किं हिन्दी संस्कृत की वास्तविक उतराधिकारीणी है । और आधुनिक युग में अन्य भाषाओं की तरह वही स्थान है, जो प्राचीनकाल में संस्कृत का था ।